खुशबू के बयान और मेरठ पुलिस द्वारा प्रेमी युगलों पर हमले के बहाने

भारतीय समाज और जनवाद पर कुछ विचार

• अभिनव

हाल ही में कुछ घटनाएँ हुईं जो किसी भी जनवादी सोच रखने वाले भारतीय नागरिक के लिए काफ़ी चिन्तित कर देने वाली थीं। पहली घटना तो दक्षिण भारतीय अभिनेत्री खुशबू के बयान पर होने वाला हंगामा था। दूसरी घटना मेरठ में पुलिस द्वारा चलाया गया तथाकथित 'ऑपरेशन मजनूँ' था। ये दोनों घटनाएँ कुछ महत्वपूर्ण विचार-बिन्दुओं पर सोचने के लिए मजबूर करती हैं। क्या हम एक जनतांत्रिक समाज में जी रहे हैं? क्या संविधान हमें स्वतंत्रतापूर्वक अपने विचार अभिव्यक्त करने की जो आज़ादी देता है, वह सिर्फ कागज़ी है? क्या यह समाज दो वयस्क स्त्री और पुरुष को प्रेम करने या अपनी मर्ज़ी से मिलने और पार्क में साथ बैठने तक की इजाज़त नहीं देगा? कुल मिलाकर क्या भारत एक जनतांत्रिक देश है? और बस ये ही घटनाएँ नहीं हैं। तमाम ऐसी घटनाएँ मेरठ, सहारनपुर, हरियाणा आदि जैसी जगहों पर घटती रहती हैं। 'मॉरल पुलिसिंग' का सवाल कोई छोटा सवाल नहीं है।

कहने को तो भारतीय संविधान हम सबको अपने विचार अभिव्यक्त करने की पूरी आज़ादी देता है, लेकिन क्या उसका कोई अर्थ है?

ऐतिहासिक तौर पर, जनवाद का जन्म पूँजीवाद के साथ हुआ। पश्चिम में पूँजीवाद की विजय के साथ ही पूँजीवादी जनवाद आया। लेकिन बुर्जुआ क्रान्तियों से पहले ही समाज में जनवाद के बीज पड़ चुके थे। क्रान्ति के बाद पूँजीपति वर्ग ने जनता के साथ गद्दारी करते हुए जनवाद को पूँजीपति वर्ग तक सीमित कर दिया। वैसे भी जनवाद को औद्योगिक पूँजीवाद ने जन्म दिया था। औद्योगिक पूँजीवाद में वह गतिशीलता मौजूद थी जो जनवाद दे सकती थी। दूसरी बात यह कि औद्योगिक पूँजीवाद के विकास के लिए जनवाद की ज़रूरत भी थी। लेकिन अब जब कि औद्योगिक पूँजी चालक की भूमिका छोड़कर कण्डक्टर की भूमिका में आ चुकी है, और वित्तीय पूँजी के रूप में एक अनुत्पादक शक्ति ही चालक की गद्दी पर आ बैठी है तो उससे जनवाद की उम्मीद करना बेकार है। वित्तीय पूँजी के वर्चस्व में आने के साथ ही पश्चिमी देशों में भी जनवाद का क्षरण शुरू हो गया। पूँजीवाद में दो गतियाँ साथ-साथ मौजूद रहती हैं। एक तो फौरन किसी भी तरह मुनाफ़ा कमा लेने की गति होती है जो जनवाद को क्षरित करती रहती है; और दूसरी दीर्घकालिक गति होती है जो सीमित जनवाद को कायम रखती है क्योंकि जनवाद को कायम रखना पूँजीवाद को चलाने के लिए भी ज़रूरी है। इस तरह जनवाद को लगातार सीमित करते रहने वाली और इस प्रक्रिया को धीमा करने वाली प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलती रहती हैं। लेकिन पश्चिमी समाजों में राज्य द्वारा दिए जाने वाले जनवादी अधिकारों के क्षरण के बावजूद जनता के बीच लोगों के आपसी रिश्तों में जनवाद कायम रहा। उसकी वजह थी इन समाजों का क्रान्तियों के जरिए पूँजीवाद में प्रवेश। क्रान्तियों के कारण इन समाजों का एक स्वस्थ विकास हुआ।

लेकिन भारत और तीसरी दुनिया के कई देश जहाँ क्रमिक विकास के जरिए पूँजीवाद आया वहाँ तमाम विकृतियाँ पैदा हुईं। ये समाज क्रान्ति की उथल-पुथल से होकर नहीं गुज़रे। ऐसा नहीं है कि भारत में स्वस्थ विकास नहीं हो सकता था। भारत में तो दरअसल स्वस्थ पूँजीवादी विकास की प्रक्रिया और उसके लिए सामाजिक आन्दोलन शुरू भी हो चुके थे। भक्ति आन्दोलन को यूरोप में चले सुधार आन्दोलनों का समानान्तर कहा जा सकता है। लेकिन अभी यह प्रक्रिया शुरू ही हुई थी कि अंग्रेज़ों का आगमन हुआ और कुछ ही समय बाद भारत एक उपनिवेश बन गया। भारत में एक आरोपित सामाजिक संरचना स्थापित हो गई। साम्राज्यवादी परिवेश में उपनिवेशवाद के गर्भ से एक रुग्ण, विकलांग और बौना पूँजीवाद पैदा हुआ। लेकिन यह पूँजीवाद काफी चालाक भी था। इसने उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्ष में कभी जनता की पहलकदमी को निर्बन्ध नहीं किया। क्योंकि वह डरता था कि उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्ष कहीं एक जनक्रान्ति में न तब्दील हो जाए। ऐसा पूँजीवाद जो जनवाद दे सकता था, वह भी लाज़िमी तौर पर बौना और विकलांग जनवाद ही होगा। समाज में कोई क्रान्तिकारी छलांग न लगने के कारण एक अतीतोन्मुखता पैदा हुई और वह भी ऐसी अतीतोन्मुखता जो अतीत के बारे में, प्राचीन भारत की वास्तविक परम्पराओं के बारे में कुछ नहीं जानती। आज़ादी के बाद जो व्यवस्था आई, दरअसल वह एशियाई निरंकुशता और विश्व पर प्रभुत्व कायम किये पूँजीवाद का एक संलयन (फ्यूज़न) थी। भारत में फासीवाद का सामाजिक आधार भी यह निरंकुशता ही पैदा करती है। भारत में फासीवाद का एक सामाजिक आधार है, यह कोई मनोरोगियों की भीड़ मात्र नहीं है। क्रान्ति के फलस्वरूप पूँजीवाद न आने के कारण भारतीय समाज में पश्चिमी समाज की तरह जनवादी परम्पराएँ नहीं हैं।

नया वर्ष
वर्तमान की अँधेरी कोख में
पलती उम्मीदों के नाम!

यही कारण है कि जब मेरठ पुलिस प्रेमी युगलों को गांधी पार्क में बेइज्ज़त करते हुए पीट रही थी, तो कुछ लोग ऐसे भी थे, जो कह रहे थे कि 'हाँ साहब! इन लौण्डे-लौण्डियों ने तो हद ही कर दी थी!'; यही कारण है कि जब खुशबू ने विवाहपूर्व सेक्स पर अपने निजी विचार व्यक्त किये तो उन लोगों ने भी कोर्ट में उन पर चप्पल और सड़े अण्डे फेंके जिन्होंने खुशबू के नाम पर वहाँ मन्दिर बनवा रखा है; यही कारण है कि जब कोई प्रेमी युगल मेरठ या हरियाणा से फरार हो जाता है तो उन्हें खोजकर, काटकर सरेआम पेड़ पर लटका दिया जाता है।

इसके ख़िलाफ़ व्यक्तिगत विद्रोह तो होते हैं; कई नौजवान विद्रोह-स्वरूप समाज के तौर-तरीकों के विरुद्ध अपनी जीवनशैली को बदलकर कुछ कदम उठाते हैं। लेकिन ऐसी कोई चिन्ता नहीं दिख रही है कि भारतीय समाज में ऐसे अजनतांत्रिक माहौल में जी पाना सम्भव कैसे होगा? आखिर हिन्दुस्तान ऐसा समाज कब बनेगा जिसमें हर व्यक्ति को अपनी मर्ज़ी से जीने का हक़ होगा?

यह देश भी ऐसा है जहाँ इन रूढ़ियों और ढकोसलों को तोड़ने के लिए कदम उठाने पर किसी बुद्धिजीवी को ब्रूनो की तरह जलाया नहीं जाएगा या गैलीलियो की तरह जेल में नहीं डाल दिया जाएगा। लेकिन यहाँ के वामपंथी बुद्धिजीवी तक ऐसे हैं कि ब्राम्हण बुलाकर द्वार-पूजा, कन्यादान, गृह प्रवेश आदि कराते हैं। जिस देश के जनपक्षधर होने का दावा करने वाले लेखक और बुद्धिजीवी तक इतने दकियानूस, कायर, गलीज, पतित, पाखण्डी और ढोंगी हों, उनके मुँह से लोर्का, गोर्की, हिकमत, न्यूगी, और नेरूदा का नाम सुनकर शरीर में शर्म से चुनचुनी होने लगती है।

जनवाद का अर्थ महज किसी से प्यार और सरोकार रखना नहीं होता है। इसका अर्थ होता है कि दुश्मन की भी मानवीय गरिमा का सम्मान करना। यहाँ वाल्तेयर और दिदेरो के प्रकरण का ज़िक्र किया जा सकता है, जो एशियाई निरंकुशता और जनवाद की भावना के बीच के फर्क को साफ़ कर देता है। जब चर्च दिदेरो की किताबें जला रहा था, तो वाल्तेयर ने दिदेरो के समर्थन में आते हुए कहा, "मैं तुम्हारे विचारों से कतई सहमत नहीं हूँ दिदेरो। लेकिन तुम अपनी बात कह सको, इसके लिए मैं अपनी जान भी दे सकता हूँ।" और यहाँ किसी बात पर असहमत होने पर पीटा जाता है, जान ले ली जाती है, बेइज़्ज़त किया जाता है, और सड़े अण्डे और चप्पलें फेंकी जाती हैं।

लेकिन क्या यह सूरत बदली जा सकती है? क्या भारत में भी ऐसा समाज बनाया जा सकता है, जहाँ एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की मानवीय गरिमा, उसके विचारों का सम्मान करता हो; जहाँ प्रेम करने पर प्रेमी युगलों को गंड़ासे से काटकर टाँगा न जाता हो? जी हाँ, इतिहास के इस बोझ को उतार फेंकना नामुमकिन होता तो यह लेख लिखना महज एक बौद्धिक शगल होता। अब सवाल यह है कि यह कैसे हो सकता है?

जवाब एक ही है। ऐसा समाज बनाने और ऐसी संस्कृति बहाल करने का काम नौजवान ही करेगा। ऐसा समाज एक सामाजिक-आर्थिक क्रान्ति के जरिये ही आ सकता है। लेकिन इस तथ्य पर बल देते हुए यह भी याद रखना होगा कि सांस्कृतिक

(पेज 44 पर जारी)

विश्व पटल पर

इराक़ी नागरिकों पर अमेरिका के एक और वहशियाना जुल्म का खुलासा

● पवन

अभी दुनिया अमेरिकी और ब्रिटिश सेना अधिकारियों द्वारा इराक़ी कैदियों पर किए गए अमानवीय जुल्मों की तस्वीरों को भूल भी नहीं पाई थी कि अमेरिका के वहशीपन की एक नई मिसाल का खुलासा हो गया। दुनिया भर में "जनतंत्र, मानवाधिकारों आदि के इस महानतम रक्षक" का यह नया कारनामा भी दिल दहला देने वाला है। जिन रासायनिक और जैविक हथियारों की खोज करने के नाम पर अमेरिका इराक़ में घुसा था, वे तो कहीं नहीं मिले; हाँ, यह रहस्य ज़रूर खुल गया कि रासायनिक हथियारों को ढूँढने के लिए इराक़ पर हमला करने वाले अमेरिका ने इराक़ी बच्चों, महिलाओं और पुरुषों पर जमकर रासायनिक हथियारों का इस्तेमाल किया।

यह रहस्योद्घाटन इटली के सरकारी टीवी कार्यक्रम के दौरान 22 नवम्बर को एक डॉक्यूमेंट्री फिल्म द्वारा किया गया। इटली के एक भूतपूर्व नौसेना अधिकारी जेफ एंगेलहार्ट ने इस डॉक्यूमेंट्री में सफेद फास्फोरस बमों के इस्तेमाल और उनकी विनाशक क्षमता का ब्यौरा दिया। उन्होंने बताया कि उन्होंने खुद बमबारी के बाद बच्चों और महिलाओं के जले हुए शरीरों को देखा था। उन्होंने कहा, "मैंने देखा कि बच्चों और महिलाओं के शरीर जलकर झुलस गए हैं। सफेद फास्फोरस किसी को नहीं बख़्शता। बम फूटने के बाद वायुमण्डल में एक बादल-सा छा जाता है और 150 मीटर के दायरे में हरेक आदमी और जानवर को भस्म कर डालता है। यह तब तक जलता है जब तक कि यह ख़त्म न हो जाए। यह इतना घातक होता है कि हड्डियों तक को एकदम जला डालता है।"

तस्वीरें दिखाए जाने के कारण अमेरिकी साम्राज्यवादी लफ़्फ़ाज़ इस बात से सीधे तो मुकर नहीं सकते थे। इसलिए अमेरिकी सेना की पत्रिका 'फील्ड आर्टिलरी' के मार्च 2005 के अंक के एक लेख में सफेद फास्फोरस की बात स्वीकारी गई लेकिन साथ में पेण्टागन से जारी सरकारी बयान में यह झूठ गढ़ दिया गया कि इसका इस्तेमाल एक पारम्परिक युद्ध सामग्री के रूप में हुआ और इसका इस्तेमाल रात के समय दुश्मनों के ठिकानों का पता लगाने के लिए रोशनी करने के लिए किया गया था न कि दुश्मन के सिपाहियों पर। पहले तो पेण्टागन सफेद फास्फोरस के इस्तेमाल पर अनभिज्ञ बन रहा था, फिर उसे मानना पड़ा, फिर उसने हेकड़ी दिखाते हुए कहा कि अमेरिका ने युद्ध में ऐसे किसी भी हथियार का इस्तेमाल नहीं किया जो अन्तर्राष्ट्रीय कानून द्वारा प्रतिबन्धित हो। ऐसा उसने इसलिए भी कहा क्योंकि 1980 में हुए एक समझौते के अनुसार सघन आबादी वाले क्षेत्रों में सफेद फास्फोरस के प्रयोग पर पाबन्दी लगा दी गई थी, ब्रिटेन ने तो इस पर दस्तख़त कर दिये थे लेकिन अमेरिका ने नहीं किये थे।

बाल-चेहरा-चरित्र पर कुछ चिन्तन-चर्वण

(पेज 38 से जारी)

लक्ष्मण और स्वयं को परशुराम बताकर एक नयी रामलीला की पटकथा लिख डाली। अब भाजपाइयों की साहित्यिक समझ ही ऐसी होती है कि हर उपमा और रूपक को वे चौतरफा खींचकर पूरे जीवन पर फैला देना चाहते हैं। सो वैंकैया ने खुद को हनुमान बताया, कुछ भाई लोगों ने राजनाथ सिंह को (राम का खड़ांऊ लेकर शासन करने वाला) भरत बताया और फिर दशरथ, कैकेयी, मंथरा, विभीषण, आदि-आदि की पहचान की जाने लगी। उधर मुम्बई में ही बाल ठाकरे भीष्म पितामह की तरह अपने परिवार में महाभारत की नयी पटकथा तैयार होते देख रहे थे। इन सबसे यह सिद्ध हो गया कि हिन्दुत्व की राजनीति करने वाले न केवल मिथक को इतिहास बनाने की कोशिश करते हैं, बल्कि वर्तमान को भी मिथकों का भोण्डा प्रहसन बना डालते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि भाजपाइयों ने मिथकों की जो घिसाई की, अब मिथक उलटकर उनसे उसी का बदला ले रहे हैं और खूब फंचीटकर धो रहे हैं।

अटल बिहारी वाजपेयी का सबसे बड़ा साहित्यिक अवदान यह है कि अपनी कविता को वह मिथकों के युग से काफी आगे गिरधर कविराय और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों की तुकबन्दी तक खींच लाए। अब इस समय के सबसे बड़े सवालों में से एक सवाल! निर्मल वर्मा को अपना जानकर एक संघी भाई जी ने उनकी एक कहानी पढ़ी। उन्होंने पढ़कर क्या समझा और क्या सोचा—है कोई माई का लाल जो बता सके?

भारतीय समाज और जनवाद पर कुछ विचार

(पेज 8 से जारी)

संघर्ष और परिवर्तन का काम न चले तो ऐसी क्रान्ति हो ही नहीं सकती। महज आर्थिक-राजनीतिक संघर्ष से तो वैसे भी कहीं कुछ नहीं होता, लेकिन भारत के मामले में तो सांस्कृतिक क्रान्तियों को अंजाम देने का काम बड़े पैमाने पर करना होगा। क्रान्ति केवल नया आर्थिक राज बनाना नहीं बल्कि एक नया मानस गढ़ने का काम होता है। नए मूल्य स्थापित तो क्रान्ति के बाद ही होते हैं लेकिन पहले से चलने वाले सांस्कृतिक संघर्ष ही ऐसी क्रान्तियों की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं। सिर्फ व्यक्तिगत विद्रोहों से काम नहीं चलेगा, बल्कि इन रूढ़ियों को तोड़ने और जनवादी मूल्यों को जनमानस में स्थापित करने के लिए बहादुर, संवेदनशील, ज़हीन किस्म के नौजवानों को एक मंच पर आने की ज़रूरत है।

हमें यह समझना होगा कि समाज का विकास कभी नहीं रुकता; लेकिन अगर यह क्रान्तियों के ज़रिये नहीं होता तो नया समाज एक विकृत समाज ही होता है। भारत में जनवाद को पूर्णतः स्थापित करना इतिहास का बैकलॉग है जिसे भारत के युवाओं को एक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जनक्रान्ति के ज़रिये निपटाना है।

नया वर्ष
सपनों की उड़ानों के नाम
संघर्ष के संकल्पों के नाम!

आह्वान यहां से प्राप्त करें

उत्तर प्रदेश ■ जनचेतना, जाफरा बाजार, **गोरखपुर** ■ जनचेतना, 989, पुराना कटरा, यूनीवर्सिटी रॉड मनमोहन पार्क, **इलाहाबाद** ■ विजय इन्फार्मेशन सेण्टर, कचहरी बस स्टेशन, **गोरखपुर** ■ जनचेतना स्टाल, कॉफी हाउस के पास, हजरतगंज, **लखनऊ** (शाम 5 से 8.30 तक) ■ प्रोग्रेसिव बुक सेण्टर, विश्वनाथ मन्दिर गेट, बी.एच.यू. परिसर, **वाराणसी** ■ जनचेतना ठेला, चौड़ा मोड़, **नोएडा** (शाम 5 से 8) ■ शहीद पुस्तकालय, द्वारा डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, **मऊ** ■ सत्यम वर्मा, 29, यू.एन.आई. अपार्टमेण्ट, सेक्टर-11, जी.एच.-2, वसुंधरा, गाजियाबाद

उत्तरांचल ■ जनचेतना, भदईपुरा, प्राइमरी स्कूल के पास, किच्छा रोड, रुद्रपुर, **ऊधमसिंहनगर**

दिल्ली ■ अभिनव सिन्हा, बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली ■ गीता बुक सेंटर, **जे.एन.यू.** ■ बुक कार्नर, श्रीराम सेंटर, **मंडी हाउस**

बिहार ■ पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, **पटना** ■ रामनारायण राय, द्वारा राघव पटेल कपड़े की दुकान, साहेबगंज, पोस्ट करनौल, जिला-**मुजफ्फरपुर**

बंगाल ■ बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, **कलकत्ता** ■ जनार्दन थापा, लुकसान बाजार, पो. करेन, जि. **जलपाईगुड़ी** ■ राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मन्दिर, प्रधाननगर, **सिलीगुड़ी**

मध्य प्रदेश ■ चिंचोलकर बुक हाउस, बस स्टैण्ड, जगदलपुर, **बस्तर**

महाराष्ट्र ■ पीपुल्स बुक हाउस, 15, कावसजी पटेल स्ट्रीट, फोर्ट, **मुम्बई**

पंजाब ■ सुखविन्दर, 154, ओम बेकरी के सामने, शहीद करनैल सिंह नगर, फेज़-3, पखोवाल रोड, लुधियाना